निराला की स्वाधीन-चेतना और मुक्त छन्द

✧ डॉ. बिजेन्द्र कुमार सोनी

छायावाद के प्रमुख कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'मुक्त.छंद' की अवधारणा प्रस्तुत की। इस मुक्त छन्द की अवधारणा को निराला ने मनुष्यों की मुक्ति से जोड़ कर देखा। निराला ने परिमल की भूमिका में लिखा है–

''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।.......जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बन्धन नहीं रहते हैं। न मनुष्यों में न कविता में । ..... मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है।..... इस छन्द में पाठ की कला का आनन्द मिलता है और इसलिए इसकी उपयोगिता रंगमंच पर सिद्ध होती है।''[1]

'मुक्त छन्द' की अवधारणा के मूल में निराला की स्वाधीनता की भावना काम कर रही है या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह निश्चित कर लिया जाये कि 'मुक्त छन्द' के मायने क्या है? या 'मुक्त छन्द' क्या होता है?

'मुक्त छन्द' शब्द में 'मुक्त' और 'छन्द' दो शब्दों का प्रयोग है। अर्थ की दृष्टि से दोनों भिन्न–भिन्न हैं। 'छन्द' होता ही बन्धन से युक्त है । इसमें निश्चित मात्राएँ या वर्णों का होना आवश्यक है। गति, यति, लय आदि के भी नियम होते हैं जैसे –दोहा छन्द के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। विषमचरण में 13 मात्राएँ एवं समचरण में 11 मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के अन्त में गुरू लघु (ऽ।) नहीं होता है और सम चरणों के अन्त में गुरू लघु (ऽ।) होता है। इन नियमों की पालना नहीं करने पर यह छन्द दोहा नहीं रह जाता है। अतः 'छन्द' मुक्त कैसे हो सकता है। 'मुक्त' शब्द का अर्थ है किसी भी प्रकार के नियम से आजादी । यदि छन्द किसी प्रकार की आजादी लेता है, तो फिर वह छन्द नहीं रह जाता। या तो वह छन्द है या फिर नहीं है। ऐसी स्थिति में 'मुक्त' छन्द का क्या तात्पर्य है ? डॉ. रामविलास शर्मा इस पर विचार करते हुए लिखते हैं–

''छायावादी कवि के लिए आदर्श भाषा वह है जो अलंकार विहीन हो, वैसे ही उसके लिए आदर्श छन्द वह है जो बन्धनों से मुक्त हो। छन्द का अर्थ ही है भाषा को गति, लय के बन्धनों से नियंत्रित करना, इसलिए कैसा भी आदर्श छन्द हो, वह बन्धन मुक्त तो हो ही नहीं सकता। 'मुक्त छन्द' में मुक्त और छन्द परस्पर विरोधी अर्थों के द्योतक हैं।''[2]

फिर इस 'मुक्त छन्द' का क्या अर्थ है ? क्या मात्राओं या वर्णों, गति, यति, लय आदि से मुक्ति ही मुक्त छन्द है। यदि ऐसा हो तो निराला यह नहीं कहते किं मुक्त छन्द तो वह है जो छन्दों की भूमि में रह कर भी मुक्त है। यहाँ 'छन्दों की भूमि' शब्द विचारणीय है। अर्थात् मुक्त छन्द छन्दों से एकदम अलग नहीं है, वह छन्दों की भूमि में रहता है। उसमें छन्द की आत्मा लय विद्यमान रहती है परंतु वह मात्रा और वर्णों की नियमबद्धता से मुक्त है। यहाँ डॉ. नामवर सिंह का दृष्टिकोण अधिक उपयुक्त है–

''इसी स्वच्छंद–भाव की तर्क संगत परिणति मुक्त छन्द है। अर्थ की दृष्टि से 'मुक्त छन्द' शब्द के भीतर स्वतोव्याघात है। छन्द का अर्थ ही है बंधन फिर मुक्त बन्धन का क्या अर्थ है? यदि उसमें बन्धन है तो वह मुक्त कैसे है? इसलिए कुछ लोगों ने इसका अर्थ किया है, छन्द से मुक्ति। उनके अनुसार मुक्त छन्द वह है जिसमें कोई छन्द न हो। लेकिन इस तरह की बातें वे ही कर सकते हैं जिनका संगीत बोध कुण्ठित होता है। वस्तुतः मुक्त छन्द की कविता पढ़ने से किसी न किसी लय का बोध होता ही है। इससे यह पता चलता है कि मुक्त –छन्द में लय तो है परंतु उसमें तुक नहीं है और उसके सभी चरण सम नहीं हैं। इसका अर्थ यह है कि मुक्त छन्द में छन्द के बाह्य आडम्बर तो नहीं हैं परन्तु उसकी आत्मा 'लय' अवश्य है। इस तरह 'मुक्त छन्द' छन्द के बाह्य आडम्बर से मुक्त होता है परन्तु उसकी लय में बँधा रहता है। छन्द के बाह्य आडम्बर से मुक्त वह होता ही इसलिए है कि छन्द की आत्मा का अधिक मुक्त विकास कर सके। अस्तु, मुक्त छन्द का अर्थ है छन्द–रूढि से मुक्ति, छन्द मात्र से मुक्ति नहीं । इस तरह मुक्त छन्द शब्द में विरोधाभास है, वास्तविक अन्तर्विरोध नहीं।''[3]

अतः स्पष्ट है कि 'मुक्त छन्द' का तात्पर्य छन्दों से मुक्ति नहीं है। छन्द–रूढ़ि से मुक्ति है और मुक्त छन्द में छन्द की आत्मा लय विद्यमान रहती है।

अब, प्रश्न उठता है कि निराला की इस अवधारणा के मूल में उनकी स्वाधीनता की भावना काम कर रही थी या उन्होंने यों ही प्रयोग के लिए 'मुक्त छन्द' में रचना की। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि नाटकीय वार्तालाप के अनुरूप छन्द रचने के लिए निराला ने इस तरह की कविताएँ लिखी। उन्हीं के शब्दों में–

''अब प्रश्न यह है कि निराला ने कवित्त को ही मुक्त छन्द का आधार क्यों बनाया। और बहुत से गणात्मक मात्रिक छन्द थे, उनमें किसी को चुन सकते थे। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि निराला जिस तरह की नाटकीय कविताएँ लिख रहे थे, उनमें बोलचाल की लय का होना आवश्यक था। इस लय में विविधता होती है, उतार–चढ़ाव होता है, कुछ शब्दों पर कम, कुछ पर अधिक जोर दिया जाता है। यह विविधता मात्रिक छन्द में लिखी हुई कविताओं में न दिखायी देती थी, गणात्मक वृत्तों में उसका अभाव और ज्यादा था, इसलिए निराला ने कवित्त को मुक्त छन्द का आधार बनाया। ''उसका सौन्दर्य गाने में नहीं वार्तालाप करने में है–'पंत जी और पल्लव' में उनकी यह मुक्त छन्द सम्बन्धी स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे पता

149, डॉक्टर्स कॉलोनी, डी.सी.एम., अजमेर रोड, जयपुर (राज.)

चलता है कि उनकी मूल समस्या वेदान्त ज्ञान के अनुरूप छन्द को मुक्त करने की नहीं है वरन् छंद की गति को वार्तालाप के अनुकूल बनाने की है।''[4]

अतः डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि मुक्त छन्द की सृष्टि स्वाधीन चेतना के कारण नहीं अपितु कविता को वार्तालाप की शैली के अनुरूप बनाने के लिए हुई है। इसी संदर्भ में वे आगे लिखते हैं–

'पंत जी और पल्लव' में निराला ने लिखा है कि उन्होंने हिन्दी और बँगला के नाटक देखे थे अलफ्रेड और कोरिंथियन कम्पनियों के नटों को हिन्दी उच्चारण बड़ा अस्वाभाविक लगा था, इस तरह शहिन्दी के अभिनय की सफलता पर विचार करते हुए, बोलते हुए जिस छन्द की सृष्टि हुई, वह यही है।' वेदों से प्रमाण देने ,भाव की मुक्ति से छन्द की मुक्ति की बात उन्हें बाद में सूझी, मूल बात थी नाटकीय वार्तालाप के अनुरूप छंद रचने की।''[5]

इसी क्रम में डॉ. रामविलास शर्मा ने मुक्त छन्द की 'नाटकीय वार्तालाप' की क्षमता का उदाहरण देते हुए बताया है कि मंच पर जहाँ उर्दू कविता के समक्ष ब्रजभाषा की कविताएँ दबी–दबी –सी लगती थी वहीं निराला के मुक्त छन्द प्रशंसित होते थे। 'मेरे गीत और कला' में निराला ने उर्दू और ब्रजभाषा के बारे में लिखा कि जिन कवि– सम्मेलनों में इन दोनों के कवि इकट्ठे होते हैं उनमें उर्दू वाले बाजी मार ले जाते हैं। कारण यह समझ में आया कि जिस जगह ठहर कर वे बोलते हैं ''वह जीतने वालों का घर है– ब्रजभाषा के मुकाबले'' यानी उर्दू वालों की आवाज बुलन्द होती है, ब्रजभाषा वालों का स्वर दबा लगता है। ऐसा क्यों होता है ? निराला को अपना मुक्त छन्द उर्दू के सामने दबा हुआ क्यों नहीं लगता ? कहते हैं उर्दू वालों के बीच दो चार बार पढ़ने का मौका मिला, श्जहाँ धड़ाधड़ मुक्त छन्द के गोले निकलने शुरू हुए कि भाइयों की समझ में आ गया कि हाँ कुछ पढ़ा जा रहा है –यह गड्ड, गड्ड, गड्ड, गड्ड नहीं है।''[6]

मुक्त छन्द की रचना निराला ने चाहे मंच पर नाटकीय वार्तालाप की सफलता के निमित्त की हो ,या और किसी वजह से। इसे भावों की मुक्ति से जोड़ने की बात निराला को भले ही बाद में सूझी हो लेकिन मुक्त छन्द की रचना स्वाधीनता की चेतना का ही परिणाम है। निराला स्वभावतः स्वाधीनता की भावना से लबरेज हैं। उनकी प्रकृति मुक्तिकामी है। वे स्वतंत्रता एवं मुक्ति की आकांक्षा के कवि हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं से लेकर अंत तक यह स्वाधीनता –चेतना देखी जा सकती है उनकी प्रारम्भिक दौर की कविता श्जूही की कलीश छन्द–विधान की दृष्टि से मुक्त–छन्द का उदाहरण है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में–

''हिन्दी में मुक्त छन्द के प्रवर्तक निराला के मुक्त छन्दों में इसी आदर्श का पालन दिखाई पड़ता है। उनकी पहली कविता तथा हिन्दी के पहले मुक्त छन्द 'जूही की कली' में छन्द की रूढ़ियों से मुक्ति तथा आत्मा की रक्षा का आदर्श देखा जा सकता है–

विजन–वन–वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह–स्वप्न–मग्न–अमल–कोमल–तनु–तरूणी
जूही की कली
दृग बन्द किए ,शिथिल पत्रांक में।

इस छन्द की लय घनाक्षरी की है, परन्तु इसके चरण विषम हैं और तुक भी नहीं है। मुक्त यह इस बात में है कि भावावेग के अनुकूल इसके चरणों का विस्तार और संकोच किया गया है।''[7] स्वयं निराला मुक्त छन्द को स्वाधीन–चेतना का परिणाम मानते हैं। वे 'मन के सहज प्रकाशन' के पक्षधर हैं–

''भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी
मुक्त छन्द
सहज प्रकाशन वह मन का–
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्रण।''[8]

'अकृत्रिम चित्रण' करने वाला कैसे कृत्रिम रूप का हामी हो सकता है। बनावटीपन उन्हें स्वीकार्य नहीं, इसलिए सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के वे कायल हैं।

उनकी यह मुक्ति कामना एक तरफ अंग्रेजों से देश को मुक्त कराने की है, तो दूसरी तरफ भारतीय समाज में व्याप्त शोषण, अत्याचार, अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से आजाद कराने की है। इसलिए उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय आंदोलन का स्वर बहुत ऊँचा है। अपने समस्त समकालीन कवियों में निराला की कविताएँ अधिक विद्रोही तेवर लिए हुए हैं। कहीं सीधे–सीधे, तो कहीं प्रगाढ़ रचनात्मक रूप में। 'राम की शक्ति पूजा' एवं 'तुलसीदास' राष्ट्रीय मुक्ति की आकांक्षा की रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। 'राम की शक्ति पूजा' के राम और 'तुलसीदास' के तुलसी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक संकट से जूझने वाले मुक्तिकामी चरित्र हैं, जो प्रकारान्तर से निराला ही हैं।

ब्रिटिश सत्ता के अधीन भारतवासियों का सांस्कृतिक गौरव नष्ट किया जा रहा था। भारत के इतिहास और संस्कृति की विकृत और विरूप व्याख्याएँ अंग्रेजों के द्वारा समूचे विश्व में प्रचारित की जा रही थी। अपने देश और उसके अतीत को लेकर जो हीन भावना भारतीय मानस में भर दी गई थी, भारत के अतीत के पुनर्मूल्यांकन और पुनर्व्याख्या के जरिए ही उसे दूर किया जा सकता था। इस कार्य को नवजागरण के संवाहकों ने काफी कुछ सफलता के साथ सम्पन्न किया। निराला ने भी अपनी उद्‌बोधनात्मक कविता 'जागो फिर एक बार' के माध्यम से यही काम किया। इस कविता में भी निराला ने मनुष्य की मुक्ति को छन्द की मुक्ति से जोडा है–

''पशु नहीं, वीर तुम
समरशूर, क्रूर नहीं
काल चक्र में हो दबे,
आज तुम राजकुंवर
समर सरताज
मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा–विहीन बन्ध छन्द ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानंद रूप''

यहाँ मनुष्य भी वैसे ही मुक्त है जैसे मुक्त छन्द विविध बंधनों से। निराला की यह मुक्ति कामना की भावना उनके काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। 'निराला और नवजागरण' नामक निबंध में शिवकुमार मिश्र लिखते हैं–

''नवजागरण के संवाहकों ने विवेकवाद पर बल देते हुए अज्ञान, जडता, अंध– आस्थाओं और अंधविश्वासों पर

जो प्रहार किए, अपने बंगाल प्रवास में निराला ने उन्हें देखा और अपनी चेतना में संचित किया था। अज्ञान और जडता से मुक्ति के बिना भारत और भारतवासियों की मुक्ति संभव नहीं है, इस सत्य को वे अपनी अन्तरात्मा के स्तर पर पहचान और जान चुके थे। अपने अनेक गीतों और रचनाओं में उन्होंने बार –बार अज्ञान जन्य रूढ़ियों, विश्वासों और जड़ आस्थाओं पर प्रहार किए हैं तथा ज्ञान और विवेकपुष्ट जीवन–विश्वास पाने की लालसा व्यक्त की है। अपनी प्रसिद्ध 'सरस्वती वंदना' में वे वीणावादिनी से अपने लिए, अपने देशवासियों के लिए और कुछ नहीं माँगते महज ज्ञान की ज्योति की आकांक्षा करते हैं, उस ज्योति की जो मनुष्य को मुक्त करती है। वे मुक्ति के आकाँक्षी हैं। हर प्रकार की गुलामी से मुक्त होकर स्वतंत्र आकाश में पक्षियों की भाँति स्वतंत्र रूप से विचरण करने के आकाँक्षी हैं।''[9]

'बादल राग' से सम्बंधित अपनी रचनाओं में निराला ने मनुष्य की मुक्तिकामी चेतना को ओजस्वी अभिव्यक्ति प्रदान की है। मनुष्य की मुक्ति उनके लिए एक ऐसा संकल्प रहा है जिसके हेतु वे जीवनभर संघर्ष करते रहे।[10]

'बादल राग' ही नहीं 'तोडती पत्थर', 'प्रेम संगीत', 'गर्म पकोडी', 'कुकुरमुत्ता', 'सरोजस्मृति' 'धारा', 'आवाहन', 'जागो फिर एक बार' आदि कविताओं में निराला स्वाधीनता के अभिप्राय को स्पष्ट करते हैं। निराला की स्वाधीन–चेतना पर टिप्पणी करते हुए परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं –''मुक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष निराला की रचनात्मकता का स्वभाव बन गया है मनुष्य की मुक्ति और कविता की मुक्ति को अभिन्न मानते हुए निराला ने प्रगल्भ प्रेम कविता में बंधनमय छन्दों की छोटी राह से ही नहीं जीवन की अनेक रूढ़ियों से निकलने की इच्छा प्रकट की थी–

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्धविकच इस हृदय में आ तू
प्रिये छोडकर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह''[11]

''निराला की इस स्वाधीन –चेतना के दर्शन सिर्फ काव्य में ही नहीं उनके गद्य में भी मिलते हैं। चतुरी चमार, विल्लेसुर बकरिहा, देवी, कुल्लीभाट जैसी रचनाओं में दलितों के प्रति संवेदना को पूरे उत्कर्ष में देखा जा सकता है। यहाँ दलितों के प्रति महज सहानुभूति नहीं है, उनके स्वत्व के लिए किया गया संघर्ष भी विद्यमान हैं।''[12] तुलसीदास में भी वे वर्ण व्यवस्था की असंगतियों और अमानवीयता को धिक्कारते हुए दलितों की मुक्ति की कामना करते हैं–

वे शेष–श्वास पशु, मूक भाष, पाते प्रहार, अब हताश्वास
सोचते कभी आजन्म ग्रास द्विजगण के,
होना ही उनका धर्म परम, वे वर्णाधम रे द्विज उत्तम
रे चरण चरण बस वर्णाश्रम रक्षण के।।

यह दलितों की मुक्ति कामना निराला के स्वाधीन–चेतना सम्पन्न व्यक्तित्व की परिचायक है। यही स्वाधीन चेतना मुक्त छंद के लिए भी जिम्मेदार है।

निराला की स्वाधीन–चेतना और मुक्त छंद की अवधारणा के संदर्भ में डॉ.दूधनाथ सिंह के विचार थोडे भिन्न हैं। वे निराला की मुक्ति कामना और मुक्त छन्दों के अंतर्विरोधा को रेखांकित करते हुए कहते हैं–''मेरी यह धरणा है कि निराला का यह दृष्टिकोण एक अर्धसत्य से अधिक कुछ नहीं है। छन्द से मुक्ति हो जाने पर कविता अपनी छन्दानुशासन की परम्परा से मुक्त हो सकती है, लेकिन मात्र इसी से उसमें सम्वेदनागत मुक्तता कैसे आयेगी ? स्वयं निराला ने छन्द प्रयोगों के अनुसार श्परिमलश की कविताओं का जो विभाजन किया है, वह संवेदनागत वैविध्य से भरा हुआ है। 'जूही ही कली' जो स्वच्छंद छन्द में लिखी गयी है, प्रेम, रोमान्स और विलास की अद्भुत छवियों वाली कविता है और सभी लिहाज से वह छायावादी ऐश्वर्य–सम्पन्नता का उदाहरण है। वह कहीं भी भारतीय कविता की दो हजार वर्षों की आभिजात्य परम्परा से अलग की कविता नहीं है। इसी तरह 'शेफालिका' 'जागृति में सुप्ति थी' इत्यादि कविताएँ भी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है। 'सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली, मसल दिये गोरे कपोल गोल' या 'बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से, यौवन उभार ने' जैसी पंक्तियाँ नितान्त रीत्यात्मक हैं। मैथिलीशरण गुप्त की 'सखि, वे मुझसे कह कर जाते' के सामने ये पंक्तियाँ भले ही नयी लगे –बिहारी, देव, और घनानंद की रचनाओं के आगे इनकी कोई अलग से विशिष्टता नहीं बतायी जा सकती। अतः काव्य आभिजात्य परम्परा से मुक्ति का उदाहरण ये कविताएँ नहीं हैं।''[13]

निश्चय ही दूधनाथ सिंह जी का सूक्ष्म अवलोकन और उनके तर्क प्रशंसनीय हैं। वे निराला की कविताओं के अंतर्विरोध को पहचान सकें। पर इस तर्क के आधार पर निराला की स्वाधीनता की भावना से ही मुक्त छंद की अवधारणा पर जन्म हुआ, इस सत्य को नहीं नकार सकते। एक कवि भिन्न–भिन्न मूड में, अलग–अलग समय पर विविध विषयों पर कविता लिखता है। निराला की श्रृंगारपरक कविताएँ उसी मनः स्थिति की उपज होंगी।

निराला ने मुक्त छंद में सिर्फ श्रृंगारिक, प्रेमपरक या अश्लील कविताएँ ही नहीं लिखी हैं। विधवा, भिक्षुक, बादल राग,जागो फिर एक बार, तोडती पत्थर, गर्म पकौडी, कुकुरमुत्ता आदि कविताएँ भी उन्होंने ही लिखी हैं, जो उनकी स्वाधीन चेतना का ही परिणाम हैं। निराला के गीतों के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं–''निराला के गीत विविध मनः स्थितियों का अंकन करते हैं। ऋतु–गीत और प्रार्थना–गीत है, उद्दाम श्रृंगार और गहरी करुणा के और सहज उल्लास तथा ओज के हैं। स्फुट कविताओं में भी ऐसा ही वैविध्य परिलक्षित किया जा सकता है।''[14] अतः श्रृंगारपरक गीतों या कविताओं के आधार पर निराला की स्वाधीन चेतना और उनके मुक्तिकामी भाव तथा मुक्त छन्द के अंतःसम्बंध को खारिज नहीं किया जा सकता है। अतः निराला की मुक्त छन्द की अवधारणा उनकी स्वाधीन–चेतना और मुक्तिकामी भाव की उपज है।

संदर्भ सूची :

1. निराला –सं. इन्द्रनाथ मदान (अपना–अपना मत शीर्षक से) पृ. 7, 2. निराला की साहित्य साधनाः डॉ. रामविलास शर्मा पृ.422, 3. छायावाद –डॉ. नामवर सिंह पृ.130–131, 4. निराला की साहित्य साधनाः डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.425, 5. वही पृ.425, 6. वही पृ. 425, 7. छायावाद –डॉ. नामवर सिंह पृ. 131, 8. परिमल –निराला पृ. 235–36,
9. निरालाः एक पुनर्मूल्यांकन –सं. डॉ. ए. अरविंदाक्षन पृ. 17, 10. वही पृ. 18, 11. निराला –परमानंद श्रीवास्तव पृ. 23, 12. निरालाः एक पुनर्मूल्यांकन – सं. डॉ. ए. अरविंदाक्षन पृ. 16 (लेख –निराला और नवजागरण –शिव कुमार मिश्र), 13. निरालाः आत्महंता आस्था –दूधनाथ सिंह पृ.163, 14. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास –रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ. 130